श्री अरविन्द

नारायण प्रसाद 'बिंदु'

श्री अरविन्द

नारायण प्रसाद 'बिंदु'

श्री अरविन्द

नारायण प्रसाद 'बिन्दु'

शिक्षा भारती, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : छह रुपये (6.00)

संस्करण : 1989 © प्रकाशक
शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित
SHRI ARVIND (Biography), by Narayan Prasad 'Bind

अरविन्द की महत्ता

समय-समय पर पृथ्वी पर कुछ ऐसे पुरुष आते हैं जो हमारी तरह नहीं होते । यह ठीक है कि देखने-सुनने में वे दूसरों से भिन्न नहीं होते, पर यह भी सत्य है कि हममें और उनमें इतना अधिक अन्तर होता है जितना यहां के सुख और स्वर्ग के आनन्द में । उनके प्रकाश से हमारा जीवन प्रकाशित होता है । पृथ्वी के पुत्रों में वह देवताओं के पुत्र होते हैं । ऐसे देवपुत्रों में श्री अरविन्द की बचपन से ही गणना थी ।

जिन श्री अरविन्द को हम आज भी पहचान नहीं सके हैं उन्हें कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने आज से 50 वर्ष पूर्व पहचाना था और एक कविता लिखकर वंदना की थी ।

जितना महान हमारा देश है, उतने ही महान श्री अरविन्द थे । भारतवर्ष जो कभी था और सुदूर भविष्य में जो होने को है, उसका दिव्य प्रकाश हमने श्री अरविन्द में देखा ।

श्री अरविन्द के विचार में संसार में मानव-सभ्यता का काल पक चुका है। अब एक नया युग आने वाला है जिसमें मन के स्थान पर उससे भी ऊंची चेतना जीवन का नियंत्रण करेगी। इसी युग को लाने के लिए वह जीवन-भर अपनी योग-साधना से प्रयत्न करते रहे।

ग्यारह वर्ष की उम्र से ही वह सोचने लगे थे कि दुनिया में कोई बहुत बड़ी उथल-पुथल आने वाली है और उसमें उनको भी भाग लेना होगा। 18 वर्ष की आयु में उनकी यह धारणा दृढ़ हुई। वे जब विलायत में पढ़ते थे, तभी उन्होंने देश के लिए अपना सर्वस्व होम करने की ठान ली थी।

जब वे राजनीति में उतरे, देश को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने का किसीको कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। श्री अरविन्द ने देश को एक राजनीतिक दर्शन ही नहीं दिया, उसे क्रियान्वित करके भी दिखा दिया। एक ऐसा ज़माना था जब कलकत्ता का कोई पत्र श्री अरविन्द का लेख छापने का साहस नहीं करता था। उन्होंने कुछ ही दिनों में देश-भर में क्रांति की ऐसी लहर दौड़ा दी कि लोग तन से ही नहीं, मन से भी स्वदेशी बन गए। उन्होंने हमें सिखाया, "सबसे पहले भारतीय बनो।"

श्री अरविन्द के राजनीतिक जीवन में भी गीता पढ़ी जा सकती थी । उनमें संसार को वेद-उपनिषद् का जीता-जागता स्वरूप देखने को मिला ।

श्री अरविन्द का जीवन एक प्रयोगशाला था । उस प्रयोगशाला से उन्होंने एक नई दुनिया को जन्म दिया । इस प्रयोगशाला में वह जीवन-भर अनुसंधान करते रहे ।

श्री अरविन्द का सपना था—एक नई दुनिया, नया दर्शन, नया युग, नई हवा, नया मनुष्य—इतना नया जितना मनुष्य पशु के लिए नया था । उनकी दृष्टि मानव के भविष्य पर टिकी थी ।

संसार के जितने महान कार्य हैं, वे सब कभी किसी न किसी के सपने ही थे । जब सपना आ गया है तो एक न एक दिन वह रूप भी ले ही लेगा । यह सपना कैसे सच होगा, यह भारत ही दिखा सकता है और समय आने पर दिखाएगा ।

21 वर्ष की आयु तक श्री अरविन्द की योग में रुचि नहीं थी, फिर भी वह इतने बड़े योगी बन गए ।

जन्म

1872 का साल । 15 अगस्त की पुण्य तिथि । इसी दिन पराधीन भारत की कलकत्ता नामक

नगरी में सुबह साढ़े चार बजे श्री अरविन्द का जन्म हुआ था। उस समय कौन जानता था कि यह दिवस भारतीय आकाश में सुनहरे सितारे की तरह चमकेगा। हमारी आज़ादी का दिन तो चुना गया था 3 जून, 1948 ; किन्तु बदलकर उसे कर दिया गया 15 अगस्त, 1947। किसने किया ऐसा ? क्यों किया ? यह क्या अपने-आप हुआ ?

बंगाल सदा से भारत का रत्न-गर्भित प्रांत रहा है। यहां हुगली नाम की एक नगरी है। राममोहन राय और श्रीरामकृष्ण परमहंस का यहीं जन्म हुआ था। इस नगरी के पास से हुगली नाम की नदी भी बहती है। इसीके किनारे कोननगर नामक एक छोटा-सा कस्बा है। यहीं श्री अरविन्द के पिता का जन्म हुआ था। उसका नाम था कृष्णधन।

19 वर्ष बाद की उम्र में डा० कृष्णधन का विवाह उस समय के सुप्रसिद्ध नेता राजनारायण बोस की कन्या से हुआ। उस समय वह 21 वर्ष की थीं। उनका नाम था स्वर्णलता। वह इतनी सुन्दर थीं कि लोग उन्हें 'रंगपुर का गुलाब' कहा करते।

बंगाल के लोगों में उन दिनों साहब बनने की धुन सवार थी। दल के दल युवक विलायत जा रहे थे। जिसमें जितना अंग्रेज़ीपन होता, जो जितना

ठाठ से रहता उसकी उतनी कदर होती ।

राजनारायण बोस ने भी अंग्रेज़ी शिक्षा पाई थी पर औरों की तरह उन्होंने अपने को विलायती सांचे में ढलने नहीं दिया । भारतीय गौरव से वह अपने को गौरवान्वित मानते थे । भारतीय सभ्यता को वह किसी दशा में नीचा देखना नहीं चाहते थे ।

विवाह के बाद जब डा० कृष्णधन विलायत जाने लगे तो उनके मन में जो शंका उठी थी वह सही होकर रही । विलायत से डा० कृष्णधन पूरे साहब बनकर लौटे और भारत में 'साहब डाक्टर' नाम से विख्यात हुए । परन्तु बाहर से पूर्ण विलायती होने पर भी वह मन मे पूर्ण भारतीय थे । बीज रूप से पिता का यह गुण श्री अरविन्द में भी आया ।

भारतीयों में डा० घोष ही सबसे पहले सिविल सर्जन बने थे । उनके पहले आई० एम० एस० की उपाधि किसी भारतीय को नहीं मिली । उस समय इस पद का बड़ा मान था । खुलना में उनकी सबसे अधिक ख्याति हुई । वहां के घर-घर में, जन-जन की जिह्वा पर उनका नाम था । दूसरों की आंख के आंसू पोंछने में, बिलखते होंठों पर हंसी दौड़ा देने में वह अपने बच्चों तक की सुध भूल जाया करते थे । उनका घर पूर्व और पश्चिम का मिलन-स्थल था ।

श्री अरविन्द डा० कृष्णधन के तीसरे पुत्र थे। बड़े पुत्र का नाम उन्होंने विनयभूषण रखा और दूसरे का मनमोहन। तीसरे का नाम 'अरविन्द' रखा।

पिता-पुत्र

अपने बच्चों को डा० साहब अच्छी से अच्छी शिक्षा देना चाहते थे। उन्हें स्वर्ग की परवाह नहीं थी, पर बच्चे आकाश में शुक्रतारे की तरह चमकें, यही उनकी साध थी। श्री अरविन्द के प्रति उनकी शुरू से बड़ी अच्छी धारणा थी। अपने साले को उन्होंने एक पत्र में लिखा था—

"मुझे पूर्ण आशा है, 'अर' ऐसे सुचारु रूप से राजसूत्र का संचालन करेगा कि देश उससे गौरवान्वित होगा।"

पांच वर्ष की आयु में ही श्री अरविन्द माता की स्नेहमयी गोद से अलग कर दिए गए और दार्जिलिंग के लारेंट कॉनवेंट में पढ़ने के लिए भेज दिए गए।

डा० घोष को इतने से भी संतोष नहीं हुआ। सन् 1879 में अपने तीनों बच्चों को साथ लेकर वह विलायत चले गए और उन्हें एक अंग्रेज़ पादरी के सुपुर्द कर चले आए।

इंग्लैंड पहुंचने के पूर्व जहाज़ पर ही इनके कनिष्ट पुत्र का जन्म हुआ। इस लड़के ने भी देश के लिए बड़ा

इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्त करते समय

काम किया। जो भी उसके संसर्ग में आए, देश के लिए मर मिटने के हेतु पागल हो उठे। इसी लड़के का नाम था वारीन्द्रकुमार घोष। जो बड़ा होकर प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हुआ।

डा० घोष प्यार से बालक अरविन्द को 'अर' कहकर पुकारा करते थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनका 'अर' बड़ा आदमी बने। बड़ा आदमी बनना यानी, आई० सी० एस० बनना। यही थी उन दिनों बड़े आदमी बनने की परिभाषा। पिता का मन रखने के लिए श्री अरविन्द आई० सी० एस० की परीक्षा में दाखिल हो गए और सम्मान सहित पास भी हो गए, पर घुड़सवारी में कन्नी काट गए।

उन्होंने ऐसा क्यों किया ? हाथ में आया सोना क्यों गंवा दिया ? देश के लिए इतना त्याग उन दिनों नई-सी बात थी। उनके पहले देश के हित में इतना बड़ा त्याग किसीने नहीं किया था।

पिता तो चाहते थे कि उनका 'अर' भारतीय आबोहवा से दूर रहे तो फिर उनके जीवन में देश-प्रेम का बीज डाला किसने ?

इसका श्रेय उनके पिता को ही था। देश-प्रेम का बीज भी उन्होंने ही बोया था। भारत में विदेशी शासकों के जो अत्याचार होते रहते थे, उनकी खबरें

वह अपने बच्चों को विलायत में अखबार की कतरनों द्वारा पहुंचाया करते थे। उन्हें पढ़-पढ़कर बालक अरविन्द का कोमल हृदय तिलमिला उठता।

पिता तो श्री अरविन्द को आई० सी० एस० अरविन्द देखने के लिए पलकें बिछाए बैठे थे, पर हठात् उनको एक तार मिला। तार में तूफान भरा था।

श्री अरविन्द की बहन का कहना है कि वह गोधूलि का समय था और डा० कृष्णधन टमटम में घूमने के लिए जाने वाले थे। एक पैर पायदान पर रखा ही था कि तार मिला। तार में लिखा था—जिस ज़हाज़ से श्री अरविन्द आ रहे हैं, वह डूब गया। तार पढ़ते ही वह धड़ाम से गिर पड़े और 'अर', 'अर' कहते चल बसे।

भारत के इतिहास में पुत्र-स्नेह का ऐसा सुन्दर दृष्टांत यह एक ही मिलता है। पर जिस जहाज़ पर श्री अरविन्द थे, वह भला कैसे डूब सकता था ! परन्तु कितने डूबतों को उबारा है उनके 'अर' ने, यह देखने के लिए डा० घोष जीवित नहीं रहे।

विद्यार्थी-जीवन

शिक्षक वह है जो छात्रों के जीवन को ऐसा कुछ दे जो उनके जीवन की निधि बने। जिस पादरी की

देखरेख में डा० कृष्णधन अपने पुत्रों को छोड़ आए थे, वह लेटिन के बहुत बड़े विद्वान थे ।

उन्होंने बालक अरविन्द को लेटिन और अंग्रेज़ी की इतनी अच्छी शिक्षा दी कि जब वे लंदन के सेंट पाल स्कूल में दाखिल हुए तो उनकी प्रतिभा देखकर वहां के हेडमास्टर मुग्ध हो गए और स्वयं उन्हें ग्रीक पढ़ाने का भार लिया। वह बड़े पारखी थे। जो लड़का उनकी नज़र में 'ब्राइट ब्वाय' साबित होता, उसे ऊपर उठाने में वह कोई कोर-कसर नहीं रखते थे । बालक अरविन्द को भी परखते उन्हें देर नहीं लगी।

किन्तु स्कूली पुस्तकें पढ़ने में ही आपका समय नहीं जाता था । बाहरी पुस्तकों के पढ़ने में भी आप डूबे रहते थे। वह बड़ी छोटी उम्र से कविता लिखने लगे थे। कविता की जो धारा इस उम्र में फूटी, उससे आपका सारा जीवन प्लावित होता रहा।

उन्होंने जीवन-भर साधना करके जो कुछ पाया उसे वह हमारे लिए 'सावित्री' नामक गद्यकाव्य में संजोकर रख गए हैं। यह उनकी वह रचना है जिसमें युग-युग तक हमें ऋषि अरविन्द के दर्शन होते रहेंगे।

लंदन जैसे शहर में बैठकर श्री अरविन्द ने मुनि-कुमारों जैसा जीवन बिताया था। उन्हें साल-भर सुबह सैंडविच के दो टुकड़े और शाम को एक आने

का कुछ खाकर दिन गुज़ारना पड़ता था, फिर भी उन्होंने पढ़ाई में कभी ढिलाई नहीं आने दी।

उनको दुःख कभी दबा नहीं सका। पांडिचेरी आने पर भी ऐसा समय आया जब उनके पास केवल चार आने पैसे बच रहे थे। तौलिये के अभाव में वे स्नानघर से बालों का पानी हाथ से निचोड़ते बाहर आते। एक टूटी खटिया थी, उसीपर एक कोने में सोते।

विदेश में विदेशी छात्रों के बीच श्री अरविन्द ने छात्रवृत्ति प्राप्त की थी। ग्रीक और लेटिन में उन्होंने इतने नम्बर लिए जितने तब तक किसीने नहीं लिए थे। एक मज़ेदार बात यह थी कि उनके बाद का स्थान पाया था बिचक्राफ्ट ने, जो इनके सहपाठी थे। आगे चलकर इन्हींके इजलास में अलीपुर केस का विचार हुआ था। बिचक्राफ्ट थे विचाराधीश और श्री अरविन्द थे विचाराधीन।

एक बार एक अंग्रेज़ी अफसर ने अपने एक भारतीय साथी से पूछा, "आप तो बंगाली हैं न? आप क्या अरविन्द घोष को जानते हैं? मैं उसके कैम्ब्रिज-जीवन का साथी हूं। उन दिनों प्राचीन भाषाओं में वह अपना सानी नहीं रखते थे। अफसोस कि उनका जन्म भारत में हुआ। अगर वह अंग्रेज होते तो अपने

पांडित्य के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध हो जाते ।"

इससे भी बढ़कर एक और गुण था श्री अरविन्द के बाल-जीवन में । वह था उनका चरित्र-बल और संकल्प-शक्ति । उनसे पता चलता था कि भविष्य में यह युवक क्या होने को है ।

उनके कालेज के अध्यक्ष ने लिखा था—"घोष का चरित्र आदर्श-स्वरूप है । अंग्रेज़ी भाषा में उसका ज्ञान औसत छात्रों से कहीं अधिक है और अंग्रेज़ युवकों से वह कहीं अच्छी अंग्रेज़ी लिख सकता है । उसमें योग्यता ही नहीं, चरित्र-बल भी है ।"

बचपन से 14 वर्ष अंग्रेज़ों के बीच रहकर भी युवक अरविन्द अरविन्द ही रहे । तिल-भर भी साहब अरविन्द नहीं बने । आप सदा भारतीय बने रहने में गौरव अनुभव करते थे । विलायत से विदेशी बनने के बदले वे स्वदेशी बनकर लौटे ।

किशोरावस्था के स्वप्न

विद्यार्थी-जीवन से ही राजनीति ने श्री अरविन्द के जीवन में प्रवेश किया था । बाहर से श्री अरविन्द एक शांत, शिष्ट, कोमल-हृदय युवक-से लगते, पर भीतर से वे कितने ज्वालामय थे, यह स्वदेशी युवक श्री अरविन्द में देखने को मिलता है । उन दिनों उनकी

लेखनी से बिजली निकलती थी। इसका कुछ आभास उनके विद्यार्थी-जीवन में भी देखने को मिलता है।

सन् 1892 में दादाभाई नौरोजी जब विलायत में एम० पी० बनने के लिए खड़े हुए तब श्री अरविन्द वहीं थे। वहीं उनकी खुशामदी नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस किया था उन्होंने।

इन्हीं दिनों लंदन में एक क्रांतिकारी सभा कायम हुई थी। इसमें श्री अरविन्द के भाई भी शरीक हुए थे। प्रत्येक ने इसमें प्रतिज्ञा ली थी कि देश के लिए उनमें से हरेक कोई ऐसा कार्य करेगा जो विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने में सहायक हो। ब्रम फेंकने की बात भी, कहते हैं, इन्हीं दिनों श्री अरविन्द के मन में आई।

यह वह ज़माना था जब विदेशी शासन के विरुद्ध कोई जीभ हिलाने तक का साहस नहीं कर पाता था। पर सत्ताधारियों की राजधानी में बैठकर उनके शासन के विरुद्ध आप ऐसी आवाज़ उठाते थे जैसी भारत में भी कभी नहीं सुनी गई। इसका मूल्य भी उन्हें तुरन्त चुकाना पड़ा।

यह मूल्य चुकाकर भी आप अपने पथ से विरत नहीं हुए। भारत आते ही एक कल्पित नाम से उनके ऐसे-ऐसे लेख निकलने लगे कि लोग दंग रह गए। न्यायमूर्ति रानाडे जैसे पुरुष के कान खड़े हो गए।

देश को आज़ाद कराने के हेतु जो आग उनके भीतर सुलग रही थी, उसे आप सारे देश में फैलाना चाहते थे। शायद उनके मन में ही पहले-पहल यह बात आई कि खुशामदी नीति से कुछ हासिल नहीं होने का। देशमाता बलिदान मांगती है। बलिदान देने के लिए कमर कसकर आग से खेलना होगा।

उनके जीवन में अभी योग-जीवन का संगीत आरंभ नहीं हुआ था। उनके जीवन में भगवान अभी नहीं आए थे। देश ही उनके लिए भगवान था। उस युग के श्री अरविन्द का हृदय देश-प्रेम के अमृत से कैसा लबालब भरा था, इसका पता उन पत्रों से लगता है जो उन्होंने अपनी पत्नी को लिखे थे :

"...भगवान को धन समर्पित करने का अर्थ है पवित्र कार्य में खर्च करना...बताओ क्या तुम मेरी सहधर्मिणी होकर इस धर्म में मेरा साथ दोगी ? मैं एक साधारण व्यक्ति की तरह रहना चाहता हूं। अपने भोजन और वस्त्र पर उतना ही खर्च करना चाहता हूं जितना एक मामूली आदमी कर पाता है ;

"मेरा दूसरा सपना, जो अभी हाल में ही मुझपर सवार हुआ है, यह है कि जैसे भी हो भगवान का दर्शन प्राप्त किया जाए-एक मास के अन्दर ही अनुभव करने लगा हूं कि हिन्दू धर्म की बात झूठी नहीं है।"

इन बातों से प्रकट होता है कि इस युवक के मन में कैसे-कैसे सपने पल रहे थे ।

महान् तैयारी

जब श्री अरविन्द विलायत में थे तभी उनकी बड़ौदा के महाराज गायकवाड़ से भेंट हुई । वे श्री अरविन्द से मिलकर इतने प्रभावित हुए कि उसी समय अपने राज्य में रहने का आग्रह किया । 1893 में श्री अरविन्द भारत के लिए रवाना हुए ।

उस समय वेश-भूषा से वे मानो पूरे साहब ही थे । अपनी मातृभाषा में एक शब्द भी नहीं बोल पाते थे । किन्तु कुछ दिनों में ही उन्होंने अपने-आपको इतना बदल डाला कि जब दीनेन्द्रकुमार उन्हें बंगला पढ़ाने बड़ौदा आए तो श्री अरविन्द को देखकर बड़े हैरान हुए—

"पांव में नोकदार जूते, देशी मिल की धोती, मोटी अचकन, सिर पर लम्बे-लम्बे बाल—यही हैं, सात-सात विदेशी भाषाओं के ज्ञाता अरविन्द घोष ? विलायत में पाश्चात्य संस्कृति का तो खूब छककर पान किया था पर भारतीय संस्कृति में वे बिलकुल कोरे रह गए थे । इस कमी को बड़ौदा में पूरा किया ।"

चार वर्ष में ही उनका संस्कृत में इतना प्रवेश हो गया कि वे कालिदास की रचनाओं का मूल से अंग्रेज़ी में अनुवाद करने लगे।

पुस्तकों के पढ़ने में वे डूब जाते। उनके चारों ओर पुस्तकों के ढेर लगे रहते। पढ़ना उनके लिए खेल था और लिखना विनोद।

श्री अरविन्द के जीवन की सभी बातें निराली हैं। बड़ौदा के राजदरबार में रहने वाले किसी व्यक्ति से कोई आशा कर सकता है कि कोई इतने कम सामान में अपना निर्वाह कर लेगा।

किसीने ठीक ही कहा है, "महानता के लक्षण बड़े-बड़े कार्यों से नहीं वरन् जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से परखे जाते हैं।"

बम केस की गिरफ्तारी के समय कलकत्ते के पुलिस कमिश्नर ने जब श्री अरविन्द के कमरे पर धावा बोला तो यह देखकर उन्हें बड़ी हैरानी हुई कि श्री अरविन्द जैसे पढ़े-लिखे व्यक्ति एक मामूली-से मकान में रहते हैं, ज़मीन पर सोते हैं।"

जब मि० नेविनसन श्री अरविन्द से मिलने गए तो एक बड़े हॉल में एक चटाई बिछी देखकर दंग रह गए।

श्री अरविन्द का बड़ौदाकालीन एक छात्र

लिखता है .

"श्री अरविन्द अपने रहन-सहन में बिलकुल सादे थे। नारियल की रस्सियों से बुनी एक खाट थी, उसी पर एक चादर डालकर सोते थे।" एक बार उसने पूछा—"इतने सख्त बिस्तर पर क्यों सोते हैं ?"

इसपर उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "प्यारे बच्चे, क्या तुम नहीं जानते कि मैं एक ब्रह्मचारी हूं ? हमारे शास्त्रों में कहा है कि ब्रह्मचारी को कोमल शय्या पर नहीं सोना चाहिए।"

क्रोध करना तो श्री अरविन्द जानते ही नहीं थे। उनका भोजन बनाने के लिए जो रसोईया था, घर की देख-भाल करने के लिए जो नौकर थे, वे इतने लापरवाह और आलसी थे कि दूसरे के यहां दो-एक दिन भी न टिक पाते। पर एक क्षण के लिए भी श्री अरविन्द को किसीने अप्रसन्न होते नहीं देखा।

'वन्दे मातरम्' के दिनों में सुधीर सरकार उनके साथ रहा करते। एक बार उन्हें मलेरिया हो गया। दो महीने से पीड़ित देखकर आबोहवा बदलने के लिए श्री अरविन्द उन्हें देवघर ले गए। एक दिन की बात है, जब श्री अरविन्द 'वन्दे मातरम्' के लिए लेख टाइप कर रहे थे, सुधीर सरकार कै कर बैठे। उसकी छींटें कागज़ों पर जा पड़ीं। क्रुद्ध होना तो दूर रहा, श्री

अरविन्द ने इतना भी नहीं कहा, 'क्या किया ?' बल्कि उठकर वमन उठाने लगे ।

रुपये-पैसे का मोह तो उन्हें छू तक नहीं गया था । उन्हें तीन महीने का वेतन एक थैली में एक साथ मिला करता था। उसे लाकर वह एक ट्रे में उंडेल देते । वह वहीं पड़ा रहता । जो खर्च करना होता, उठा लेते ।

किसीके पूछने पर कि "आप पैसों को इस प्रकार क्यों रखते' हैं,' वे हंसकर बोले, "यह इस बात का प्रमाण है कि मैं भले और विश्वस्त व्यक्तियों के बीच रहता हूं ।"

"हिसाब तो आप रखते नहीं, फिर कैसे जाना कि वे भले आदमी हैं ?"

"मेरा हिसाब तो भगवान रखते हैं। वे मुझे उतना ही देते हैं जितने की मुझे आवश्यकता होती है । तो फिर इन बातों के पीछे क्यों सिर खपाएं ?"

लोकप्रियता उन्हें किस हद तक प्राप्त हुई थी !

सूरत कांग्रेस के बाद जब वे बड़ौदा आए, वहां के तत्कालीन प्रिंसिपल ने हुक्म दिया कि कालेज छोड़कर कोई छात्र उनका स्वागत करने न जाए । परन्तु उनका जलूस जैसे ही कालेज के पास पहुंचा खिड़की-जंगलों से कूद-कूदकर लड़के भागे और उनके रथ का

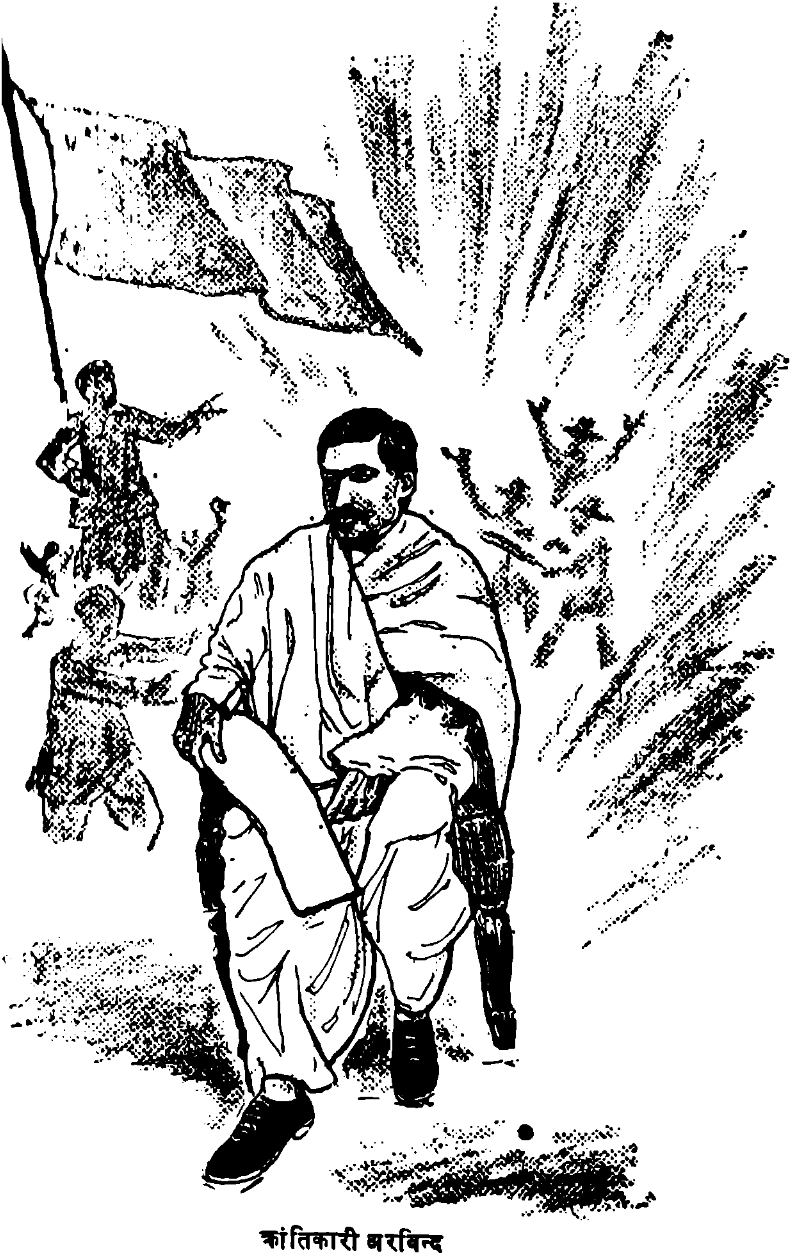

क्रांतिकारी अरविन्द

घोड़ा हटाकर खुद रथ को खींचकर ले चले ।

बड़ौदा की एक और रोचक घटना सुनिए :

मंत्रियों के साथ कभी-कभी गायकवाड़ एक योगी का दर्शन करने जाया करते । उनकी आयु 400 वर्ष बताई जाती थी । एक दिन श्री अरविन्द भी उनके साथ हो लिए ।

मण्डली के आगे-आगे थे गायकवाड़ । वृद्ध योगी ने नज़र उठाकर गायकवाड़ को देखा भी नहीं और तेजी से श्री अरविन्द के पास जा पहुंचे और बोले :

"आ गए तुम ? न जाने कितने वर्षों से तुम्हारी आने की प्रतीक्षा कर रहा हूं । अब मेरा कार्य शीघ्र ही पूरा होगा । मैं शीघ्र ही सिधार जाऊंगा । समय पर तुम्हारी सहायता करूंगा ।"

एक और भविष्यवाणी उनके बारे में मनोरंजक है ।

जब श्री अरविन्द जेल में थे, उनकी दादी ने विशुद्धानन्द से पूछा, "मेरे 'अर' का क्या होगा ?" उत्तर में उन्होंने कहा, "भगवती मां ने उनको अपनी गोद में ले लिया है वे अब तुम्हारे नहीं रहे । वे अब सारे विश्व के हैं । उनकी कीर्ति से विश्व सुरभित हो उठेगा ।"

विख्यात लेखक श्री के० एम० मुन्शी श्री अरविन्द

के छात्रों में से थे। अपनी रचनाओं में जगह-जगह उन्होंने श्री अरविन्द के संबंध में चर्चा की है। उनका कहना है कि बड़ौदा कालेज के छात्रों में रह-रहकर देश-प्रेम की जो तरंगें उठतीं, उसका बहुत कुछ श्रेय श्री अरविन्द को था।

जब भारत में बड़े-बड़े नेता अंग्रेज़ी राज्य को भगवान की देन मान रहे थे, इन्होंने देश के सामने स्वतन्त्रता का प्रस्ताव ही नहीं रखा, वरन् उसे कैसे हासिल किया जा सकता है, इसकी राह भी बताई जिसे आगे चलकर गांधी ने इतनी सफलता के साथ अपनाया।

स्वदेशी-युग के श्री अरविन्द

महाभारत में कहा गया है—"जन-नायक वह है जो काल की गति को बदल दे।" 1906 से 1910 तक श्री अरविन्द राजनीति के खुले मैदान में रहे। पर इन चार वर्षों में ही जो कुछ हुआ वह 'स्वदेशी-युग' के नाम से जाना जाने लगा।

आज कांग्रेस के पास शासन-बल है। तब उसके पास त्याग और तपस्या का बल था। श्री अरविन्द से ही वह युग आरम्भ हुआ था।

इस त्याग और तपस्या का देश के होनहार युवकों

पर क्या प्रभाव पड़ा था, यह कोई कम प्रेरणापूर्ण कहानी नहीं है।

युवक सुभाषचन्द्र बोस जब आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर चुके तो उनके मन में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। उनके पिता तो चाहते थे कि वे जल्दी से जल्दी किसी उच्च ओहदे पर आसीन हो जाएं और हज़ारों पर हुकूमत चलाएं, पर जननी जन्मभूमि शहीदों का ताज लिए खड़ी थी। सुभाष की माता दीन थीं, दुर्बल थीं, पर पिता के आगे उनका कोई ज़ोर नहीं चलता था। पिता को 'ना' कहने का वह साहस नहीं कर पा रहे थे। जब वे कुछ निर्णय नहीं कर पाए थे, तब श्री अरविन्द की मूर्ति, उनका त्याग, उनकी आंखों के सामने चमक उठा और पिता के हज़ार विरोध करने पर भी उन्होंने अपना पथ चुन लिया। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं :

"श्री अरविन्द का ज्योतिर्मय उदाहरण मेरी आंखों के सामने नाच रहा है। उस आदर्श की जो मांग है उसे पूरा करने को मैं तैयार हूं।"

जब लोगों ने देश-सेवा और राज-सेवा दोनों ही एक साथ करने की बात कही और रमेशचन्द्र दत्त का उदाहरण पेश किया तो अपने भाई शरत् बोस को उन्होंने लिखा :

"श्री अरविन्द का पथ मेरे लिए अधिक प्रेरणाप्रद है, उच्च और स्वार्थरहित है, यद्यपि रमेशदत्त के पथ से कहीं ज़्यादा कंटकाकीर्ण है।"

उन दिनों लोगों की समझ ही नहीं आता था कि भारत जैसा सब प्रकार से दीन-हीन देश भला स्वराज्य की कल्पना कैसे कर सकता है। वे कहते थे—"यह सपना है, सपना।"

श्री अरविन्द भारत को इतना गया-गुज़रा नहीं मानते थे। अपने विचारों को उन्होंने ऐसे शब्दों में रखा कि वे सदा के लिए लोगों के हृदय में बैठ गए। देशभक्ति के साथ आत्मशक्ति का जो मेल उन्होंने बिठाया वह उनके जीवन का उज्ज्वलतम पृष्ठ है।

बम्बई में जनता को नमस्कार कर जब वे बोलने लगे तो लगा, राष्ट्रीयता का कोई पैगम्बर बोल रहा है, भारत की नसों में नई जान फूंकने के लिए वह कोई पैगाम लाया है।

देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने वालों को उन्होंने कर्मयोगी माना और अपने त्याग से, तपस्या से देश के राष्ट्रीय जीवन को तपोमय बना दिया।

भारत में जितने गवंनर जनरल आए हैं उनमें लार्ड कर्ज़न सबसे अधिक ज़बरदस्त था। बंगाल में

जागृति के जो लक्षण दिखाई दे रहे थे वे सब उसे फूटी आंख नहीं सुहाते थे। इसलिए उसने एक मनसूबा गांठा। किसी तरह भारत की दो प्रधान जातियों में होड़ जगा देना जिससे वे एक-दूसरे के दुश्मन बन बैठें और सदा आपस में लड़ते-भिड़ते रहें। जब ऐसा होगा तभी भारत में अंग्रेजों का राज्य सदा कायम रह सकता है।

बड़ौदा में बैठकर श्री अरविन्द इस चतुर खिलाड़ी की सभी चालें देख रहे थे। उन्होंने निश्चय किया कि यदि बंगाल के दो टुकड़े कर दिए तो ऐसा आन्दोलन किया जाएगा कि विदेशी शासन के होश ठिकाने लग जाएं।

बंगाल के दो टुकड़े कर दिए गए। उस दिन सारे बंगाल में शोक मनाया गया। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। दल के दल युवक स्कूल-कालेज छोड़कर स्वदेशी आन्दोलन में कूद पड़े।

यहीं से जनता ने नेता का साथ देना शुरू किया और वास्तविक जन-आन्दोलन आरम्भ हुआ। यहीं से हम सत्ताधारी को यह दिखाने में समर्थ हुए कि यदि सीधे तौर से कुछ देने के लिए राजी नहीं होंगे तो हम उनकी नाक में दम कर देंगे। भारत में उनकी नींद हराम हो जाएगी। यहीं से स्वदेशी-युग का आरंभ

हुआ। यहीं से देश के वीर युवकों में यह बात उत्पन्न हुई कि देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करना मानव का गौरव है।

विप्लवी के रूप में

भीगे काठ में अग्नि पैदा करना बड़े धैर्य का काम है। एक बार कुछ चिनगारियां प्रकट हो जाएं तो उसे सुलगते देर नहीं लगती।

उन दिनों भारत का जीवन देखकर ऐसा लगता था कि किसीमें आग नहीं है। किसी प्रकार जनता रोज़ी कमाती, पेट पालती थी, पेट न भरने पर भी मुख नहीं खोलती थी। चुपचाप छाती पर पत्थर रख-कर सब कुछ सहती चली जाती थी।

भारत को अंग्रेज़ किस प्रकार चूस रहे थे इसका दादा भाई नौरोजी ने बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है—"मुहम्मद गज़नी ने 18 बार हिन्दुस्तान को लूटा। उसने जो चोट पहुंचाई वह 18 हमलों के बाद कम हो गई पर विदेशी शासन के घाव का खून तो बन्द ही नहीं होता।"

श्री अरविन्द ने ही सबसे पहले कांग्रेस की 'भिक्षां देहि' नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी और 'युद्ध देहि' का शंख फूंका था। उनकी योजना का प्रथम

चरण क्रांतिकारी आन्दोलन था। नाम था 'भवानी मन्दिर'। इस योजना के द्वारा उन्होंने देश से कुछ गिने-चुने व्यक्तियों का, जो आग की ज्वाला सर्वत्र फैला दें, आह्वान किया।

श्री अरविन्द ने अपने खर्चे से बम बनाना सीखने के लिए एक आदमी को विलायत भेजा था। वे शुरू से क्रांतिकारी थे और जीवन-भर क्रांतिकारी रहे। वे चाहते थे चौकोर क्रांति।

श्री अरविन्द ने अपनी योजना का 'भवानी मंदिर' जैसा विचित्र नाम क्यों रखा ? इसलिए कि उस ज़माने में सरकार के विरुद्ध खुले आम कुछ करना आसान नहीं था। श्री अरविन्द के नाना राजनारायण बोस को भी अपनी योजना का नाम 'हिन्दू मेला' रखना पड़ा था।

भारत के बाज़ारों में विलायती चीज़ों की भर-मार देखकर लोगों में स्वदेशी के भाव जगाने की बात सबसे पहले राजनारायण बाबू के मन में ही आई थी। उस ज़माने का एक गान इस प्रकार है :

छूई सुतो पर्यन्त आसे तुंग हते
दीयासलाई काठि ताऊ आसे पोते
प्रदीप टी ज्वालिते खेते, सुते, जेते
किछुतेई लोक नाय स्वाधीन ।

अर्थ—सुई और दियासलाई तक विलायती जहाज़ से आती हैं। खाने-पीने, सोने किसी बात में भी लोग स्वतंत्र नहीं हैं।

युवक रवीन्द्रनाथ इस मेले में जाया करते थे। 18 वर्ष की उम्र में उन्होंने उस मेले में एक कविता का पाठ किया था। 'गाम्रो भारत की जय' जैसे राष्ट्रीय गान का यहीं से सूत्रपात हुआ।

श्री अरविन्द पहले-पहल 1902 में मिदनापुर गए थे और वहां हेमचन्द्रदास से मिले थे। यहीं उन्होंने निश्चय किया कि क्रांतिकारी कार्य के लिए छः केन्द्र खोले जाएं। राइफल चलाने का अभ्यास भी उन्होंने इसी समय किया था।

दूसरी बार जब श्री अरविन्द मिदनापुर गए तो हेमचन्द्र के एक हाथ में गीता और दूसरे हाथ में तलवार देकर क्रांतिकारी दल में दीक्षित किया।

अपनी 'अग्नि-युग' नामक रचना में वारीन लिखते हैं, "श्री अरविन्द ने ही मुझे खुली तलवार और गीता हाथ में देकर उस आंदोलन में सम्मिलित किया था।" इस प्रकार जो अग्नि 1902 से सुलग रही थी, वह बंग-भंग होते ही दप् से जल उठी।

स्वदेशी के उस युग में लोगों में कैसा जोश भर गया था, उसके कुछ दृष्टांत इस प्रकार हैं :

'युगांतर' के सम्पादक को जब लम्बी सज़ा हुई तो उसकी बूढ़ी माता ने अपने पुत्र की इस देश-सेवा पर हर्ष प्रकट किया और बंगाल की 500 स्त्रियां उन्हें बधाई देने आईं ।

18 वर्ष के खुदीराम को जब फांसी की सज़ा हुई तो उसकी तस्वीरें घर-घर में दिखाई देने लगीं ।

देशद्रोही नरेन गुसाईं की हत्या करने वाले कन्हाई लाल दत्त को जब फांसी की सज़ा हुई तब उसकी चिता-भस्म को बंगाल की जनता ने मस्तक पर चन्दन की तरह लगाया ।

इससे पता चलता है कि देश के मुर्दा युवकों में नई जान फूंकने की दिशा में श्री अरविन्द की देन क्या है।

स्वदेशी-युग का नारा

क्या तुम्हें पता है कि नारे के रूप में 'वंदे-मातरम्' की शुरुआत कैसे हुई ? इसके पीछे त्याग और बलिदान की एक कहानी छिपी है ।

सूरत कांग्रेस तक कुछ लोग 'शिवाजी की जय' तो कुछ 'वंदे मातरम्' का नारा लगाते थे । बरिशाल के नेता अश्विनीकुमार थे । वहां उनका इतना प्रभाव था कि उनके हुक्म के बिना एक टुकड़ा विलायती कपड़ा या एक चम्मच विलायती नमक भी प्रवेश नहीं

पा सकता था। 1906 में यहां प्रांतीय सम्मेलन हुआ था, जिसमें श्री अरविन्द भी शामिल हुए थे।

जब बंगाल के नेतागण स्टीमर से यहां पहुंचे, तो देखते क्या हैं कि पुलिस का सख्त पहरा है, घाट पर एक भी कुली नहीं। जब पुलिस ने देखा कि बड़े घर के युवक कुलियों की तरह कंधों पर नेताओं का सामान लादकर ले जा रहे हैं, तो उनकी नानी मर गई। मजिस्ट्रेट ने हुक्म जारी किया—"राजपथ पर कोई 'वंदे मातरम्' का नारा नहीं लगा सकता।" यह सुनकर सभी का खून खौलने लगा। "वंदे मातरम्, कहना अपराध है ! मां को वंदना करना अपराध है ! नहीं मानते हम इसे !" 'वंदे मातरम्' का नारा लगाते हुए एक दल बाहर निकला। लाठी और संगीनें लिए गुरखा पुलिस सामने आकर खड़ी हो गई। किन्तु वह इन नारों को बंद नहीं कर सकी।

एक स्वयंसेवक से मि० कैम्प ने कहा—"इस बैज को निकालकर फेंक दो।" उसपर 'वंदे मातरम्' लिखा था। बालक चिल्ला उठा, "वंदे मातरम्" पीछे खड़ी जनता भी चिल्ला उठी, "वंदे मातरम् !"

"मारो !" कैम्प ने हुक्म दिया।

पुलिस निहत्थे स्वयंसेवकों पर टूट पड़ी। लाठियों की मार से लोग गिरने लगे। पर भागा कोई भी नहीं,

जितनी ही लाठियां पड़तीं, उतना ही लोग चिल्ला उठते—"वंदे मातरम् !"

पिता के सिर पर लाठी पड़ते देख एक बालक ने लाठी की मार अपने ऊपर ले ली। था तो वह बालक, पर जितनी मार उसपर पड़ती उतनी ही बार वह 'वंदे मातरम्' का नारा लगाता। मारते और घसीटते हुए पुलिस ने उसे ले जाकर एक तालाब में फेंक दिया।

जब उसके पिता खोजते-खोजते तालाब के पास पहुंचे, तब उसने कहा, "पिताजी, मैंने अन्त तक 'वंदे मातरम्, का उच्चारण करना बन्द नहीं किया।" उसे छाती से लगाते हुए पिता ने उत्तर दिया—"तुम्हारे जैसा पुत्र पाकर मैं धन्य हुआ।"

आगे चलकर बलिदानों का जो तांता लगा उसका श्रीगणेश यहीं हुआ। शासकों की जनता के साथ यह पहली मुठभेड़ थी।

जहां लाठी की वर्षा हुई थी, वहां स्मारक बनाने के लिए दूसरे दिन एक सभा बुलाई गई। एक महिला ने उठकर कहा, "जब तक 'वंदे मातरम्' से प्रतिबन्ध नहीं हटाया जाता तब तक मैं चूड़ियां नहीं पहनूंगी।" और उसने चूड़ियां उतार कर दे दीं। देखते-देखते जनता के मन से राजद्रोह का भय छूमंतर हो गया।

बरिशाल से श्री अरविन्द विपिनचन्द्र पाल के साथ पूर्वी बंगाल का दौरा करने निकले ।

ऐनी बेसेंट ने श्री अरविन्द को भारत का 'मेज़िनी' कहा था । पर तात्कालीन वायसराय लार्ड मिण्टो की नज़र में श्री अरविन्द सबसे खतरनाक व्यक्ति थे । उन्होंने भारत सचिव को यह बांत लिखी थी, जो विलायत में रहते थे ।

एक समय था जब सारा भारत बंगालियों को डरपोक और दब्बू कहा करता था । मेकॉले ने तो यहां तक लिख मारा था कि बंगालियों को अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह करना भेड़-बकरियों का खूंखार भेड़ियों से मानव का दानव से वैर मोल लेना है । परन्तु कुछ ही वर्षों में उसी बंगाल से मृत्यु से खेलने वाले ऐसे-ऐसे युवकों का जन्म हुआ कि अंग्रेज़ उनके नाम से कांपने लगे । उनकी वीरता' देश के लिए मिट जाने की क्षमता अपने हाथों फांसी को फंदा डाल देने का साहस देखकर जनता उनकी राख का तावीज़ बनाकर पहनने लगी ।

जेल-जीवन

श्री अरविन्द पर तीन बार मुकदमा चला और तीनों बार वे छोड़ दिए गए । नाम के वे कभी भूखे नहीं रहे । वे सदा पीछे रह कर काम करना चाहते थे

परन्तु यह तो सरकार थी जिसने उन्हें गिरफ्तार कर जनता के सामने लाकर खड़ा कर दिया है । मद्रास के 'स्टैण्डर्ड' ने लिखा था, "चरित्र और योग्यता की दृष्टि से इतना महान् व्यक्ति आज तक देखने में नहीं आया ।"

इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सारे देश में सनसनी फैल गई । बंगाल का जो ज़िला जज था, उसका नाम था किंग्सफोर्ड । वह बड़ा अत्याचारी था । उसने 'संध्या' के सम्पादक को जेल में सड़ाकर मार डाला था । एक 15 वर्ष के युवक को अपने सामने 15 बेंत लगवाए थे । उसका अपराध केवल इतना था कि श्री अरविन्द की गिरफ्तारी पर जो जलूस निकला था, उसपर लाठी बरसाने वाले सार्जेण्ट का उसने विरोध किया ।

किंग्सफोर्ड को मारने का प्रथम प्रयास विफल गया । फिर उसके नाम एक पारसल भेजा गया । पारसल देखने में पुस्तक जैसा था । पर उसमें एक शक्तिशाली बम था । आशा थी कि पारसल की रस्सी काटते ही बम फट पड़ेगा । पर किंग्सफोर्ड ने उसे छुआ तक नहीं । पुलिस ने पारसल को पानी में खोला, जिससे बम बेकार हो गया । कुछ दिन बाद उसकी बदली मुज़फ्फरपुर हो गई । उसे वहीं मारने के लिए

दो युवक चुने गए। उनमें से एक का नाम था खुदीराम बोस, दूसरे का प्रफुल्ल चाकी।

खुदीराम बोस उसी मिदनापुर ज़िले का था जहां के तीन ज़िलाधीशों को मौत के घाट उतारा गया था। खुदीराम बोस जब जेल में था, तो उसे चरित्र-भ्रष्ट करने के कई उपाय किए गए। पर वह नहीं डिगा। वह अपने दल के प्रति सच्चा रहा। अस्तु, जिस गाड़ी पर इस युवकों ने बम फेंका वह किंग्सफोर्ड की नहीं थी। उसमें दो मेमें बैठी थीं। तुरन्त उनकी मृत्यु हो गई। सरकार खार खाए तो बैठी थी ही। इस बम-कांड से उसे खुलकर दमन करने का मौका मिल गया।

कलकत्ते के मानिकतल्ला मुहल्ले में श्री अरविन्द की ढाई एकड़ ज़मीन थी। उसमें तीन कोठरी वाला एक मकान था। बारीनकुमार घोष कुछ युवकों के साथ वहां बम बनाया करते थे। इसका सुराग सरकार को लग गया। वहां जितने व्यक्ति थे उन सबको पकड़ लिया गया।

5 मई, 1908 को जब श्री अरविन्द सोए हुए थे, पुलिस रिवाल्वर लेकर उनके घर घुस आई और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनके साथ उस समय 34 व्यक्ति थे।

श्री अरविन्द का असली जीवन यहीं से आरम्भ

होता है ।

जब श्री अरविन्द जेल गए तो उनका हृदय पुकार उठा—"भगवान ! कहां है तुम्हारी रक्षा का हाथ ? यह क्या हुआ ?"

वे बेकार रहना कभी पसन्द नहीं करते थे । जेल की बेकारी उन्हें खलने लगी । उस समय वे यह नहीं समझ सके कि भगवान उनके साथ खेल रहे हैं, उन्हें शिक्षा दे रहे हैं । जिस कार्य के लिए उन्हें 40 वर्ष एक कोठरी में बन्द रहना पड़ेगा, उसके लिए शान्ति प्रदान कर रहे हैं ! थोड़े दिन में उनके मन की यह दुर्बलता जाती रही !

इसके बाद श्री अरविन्द को बिना प्रयास किए भगवान के दर्शन हुए । बात यह हुई कि जिस कमरे में वे रखे गए थे, वह नौ फुट लम्बा और पांच फुट चौड़ा था । मई का महीना था । थोड़ी देर में वह कमरा भट्ठी के समान हो जाता । भीषण गर्मी और बिछाने के लिए दो कम्बल तथा पानी के लिए टीन की एक बाल्टी !

चार-पांच दिन तक उनके पास पहनने के लिए वही कपड़े थे जिन्हें पहनकर वे अपने घर से आए थे। नहाने के लिए एक वार्डन उनके लिए एक छोटी-सी लंगोटी ढूंढ़ लाया था । जब तक धोती सूखती, वही

ईश्वरभक्त श्री अरविन्द

लंगोटी पहनकर वे बैठे रहते। इससे पता चलता है कि उन दिनों अरविन्द जैसे पुरुषों के साथ भी जेल में कितनी कठोरता बरती जाती थी।

कुछ दिनों बाद ही उन्हें सुबह-शाम अपनी कोठरी के बाहर टहलने की आज्ञा मिल गई। एक दिन टहलते हुए उन्होंने देखा, वे जेल की दीवार के अन्दर बंद नहीं हैं, उन्हें सब ओर से भगवान घेरे हैं। उनकी कोठरी के सामने जो पेड़ था, उन्हें लगा कि वहां पेड़ नहीं है, श्रीकृष्ण खड़े हैं और उनपर छाया किए हैं। जेल के संतरी के बदले स्वयं नारायण संतरी बनकर पहरा दे रहे हैं। कम्बल पर लेटते ही उन्हें लगा—"मेरा सखा, मेरे प्रेमास्पद श्रीकृष्ण मुझे अपने बाहुओं में लिए हुए हैं। मैंने जेल के कैदियों, चोरों, हत्यारों की ओर देखा—सबमें वासुदेव दिखाई पड़े।"

छोटी अदालत में जब मामला शुरू हुआ, तो वे देखते हैं कि अदालत की कुर्सी पर मजिस्ट्रेट नहीं स्वयं वासुदेव बैठे हैं, सरकारी वकील के भीतर भी वही बैठे मुस्करा रहे हैं।

श्री अरविन्द पर सबकी दृष्टि गड़ी थी। उन दिनों समाचारपत्र इसी मामले की पेशी आदि के समाचारों से भरे रहते थे। अपनी राय देते हुए स्वयं हाकिम ने कहा था, "इस मामले में अरविन्द घोष का नाम

शामिल न होता तो यह जाने कब का खतम हो गया होता। मुद्दई उन्हींको सबसे अधिक दोषी ठहराने के लिए उत्सुक है।"

एक दिन ऐसा भी था जब योग में श्री अरविन्द की आस्था नहीं थी। वह भारत को अंग्रेज़ों के खूनी पंजों से छुड़ाने के लिए शक्ति प्राप्त करना चाहते थे, पर भगवान उन्हें दूसरी ओर बहा ले गए। वे स्वयं कहते हैं :

"मेरा लालन-पालन विलायत में हुआ था। हिन्दू धर्म की बहुत-सी बातों को एक दिन मैं कल्पना-मात्र समझता था। यह समझता था कि इसमें बहुत कुछ भ्रम है, पर अब मैं हिन्दू धर्म के सत्य को अनुभव कर रहा हूं।

"जब मैं भगवान की ओर मुड़ा था, तब मेरे पास न ज्ञान का बल था, न भक्ति का। मेरा उनके ऊपर विश्वास भी नहीं था। मैंने कहा—'हे भगवान! तुम जानते हो, मैं मुक्ति नहीं मांगता, मैं ऐसी कोई चीज़ नहीं मांगता जिसे दूसरे लोग मांगा करते हैं, मैं तो केवल यह मांगता हूं कि इस जाति को ऊपर उठाने की मुझे शक्ति दो कि उसके प्रति मैं अपना जीवन उत्सर्ग कर सकूं। में नहीं जानता कि कौन-सा काम करूं और कैसे करूं।

"उत्तर में भगवान कहते हैं—मैं नहीं चाहता कि और-और लोग जिस प्रकार अपने देश के लिए काम करते हैं, वैसे ही तुम भी करो। मैंने तुम्हें दिखा दिया है कि हिन्दू धर्म का सत्य क्या हैं। मैं अपनी वाणी का प्रचार करने के लिए भारत को उठा रहा हूं।"

हिन्दूधर्म मनुष्य को विश्वास दिलाता है कि भगवान तुम्हारे हैं और तुम उन्हें पा सकते हो।

जेल में श्री अरविन्द का समय अधिकतर ध्यान में ही गुजरता। संध्या समय सब उन्हें घेरकर बैठते। लड़कों से वह लड़कों की तरह मिलते। उस समय उनकी रसिकता के स्रोत में सभी बह जाते।

कभी-कभी श्री अरविन्द बड़ी मीठी चुटकी लिया करते, "हमारी पुलिस का क्या कहना। जब कहीं डकैती पड़ती हो तब तो पुलिस कहीं नज़र नहीं आती, जब डकैत नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं, तब यह दल-बल सहित आ जुटती है और चट बोल उठती है—'यह स्वयंसेवकों का काम है।"

जब पुलिस गोली से ही बात करती हो तब इस प्रकार से उसकी खिल्ली उड़ाना किसी ऐसे हृदय का ही काम है जो दबना नहीं जानता। जो दिल अपने देश के लिए बिक चुका है उसका पुलिस भला क्या कर सकती है ?

श्री अरविन्द कुछ कम विनोदप्रिय नहीं थे । कलकत्ता के एक पत्र ने उन्हें सलाह दी थी कि वे अब विदेशी बहिष्कार पर वक्तृता देना छोड़कर धर्म और साहित्य की सेवा में अपना मन लगाएं तो अच्छा हो ।

उत्तर में उन्होंने कहा, "आहा ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । स्वराज्य और स्वदेशी पर लिखते रहना मेरी साहित्यिक सेवा है और इन्हीं पर भाषण देना मेरे धर्म का अंग है ।

तब तक चित्तरंजन दास 'देश बन्धु' नहीं हो पाए थे । इसी मुकदमे से उनकी ख्याति शुरू हुई । आठ दिन तक उनकी बहस चलती रही । अन्त में उन्होंने कहा :

"न्यायालय के सामने जो व्यक्ति खड़ा है, वह साधारण व्यक्ति नहीं है । उसकी मृत्यु के बहुत समय बाद, उसे देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का अवतार और मानवता का पुजारी माना जाएगा ।" तब कौन जानता था कि वाणी सत्य होकर रहेगी ।

पांडिचेरी की तपोभूमि

पांडिचेरी श्री अरविन्द की तपस्या की गुहा है । यह उनकी कर्म और साधना-भूमि है । जब वे यहां

आए तब यह मृतप्राय स्थान था। आज यह ऋषिभूमि विश्व का तीर्थस्थान है।

भारत सरकार जैसे भी हो श्री अरविन्द को पांडिचेरी से बाहर ले जाने के लिए बेचैन थी। उसे भय था कि न जाने कब वे फिर देश में तहलका मचा दें। बंगाल में पुलिस का ऐसा आतंक छाया था कि श्री अरविन्द की लिखी पुस्तकें भी लोग भयरहित हो कर खरीद नहीं पाते थे। वे उनका नाम लेते भी डरते थे।

श्री अरविन्द से दो बार कांग्रेस का सभापति बनने के लिए आग्रह किया गया। डा० मुंजे, राजर्षि टण्डन, लाला लाजपतराय सरीखे नेतागण पांडिचेरी तक आए पर श्री अरविन्द राज़ी नहीं हुए। देशबन्धु दास साधना-क्षेत्र में कूदना चाहते थे पर श्री अरविन्द ने उन्हें भारत के राजनीतिक क्षेत्र से अलग होने को मना किया।

1914 में माताजी का यहां पहली बार आगमन हुआ। उन्हींकी प्रेरणा से 'आर्य' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ! 'वंदे मातरम्' के दिनों जिस लेखनी से अग्नि के स्फुलिंग निकलकर देश-भर में छाते थे, उससे अब अमृत का झरना झरने लगा।

श्री अरविन्द ने दूसरों से बहुत पहले 'एक संसार'

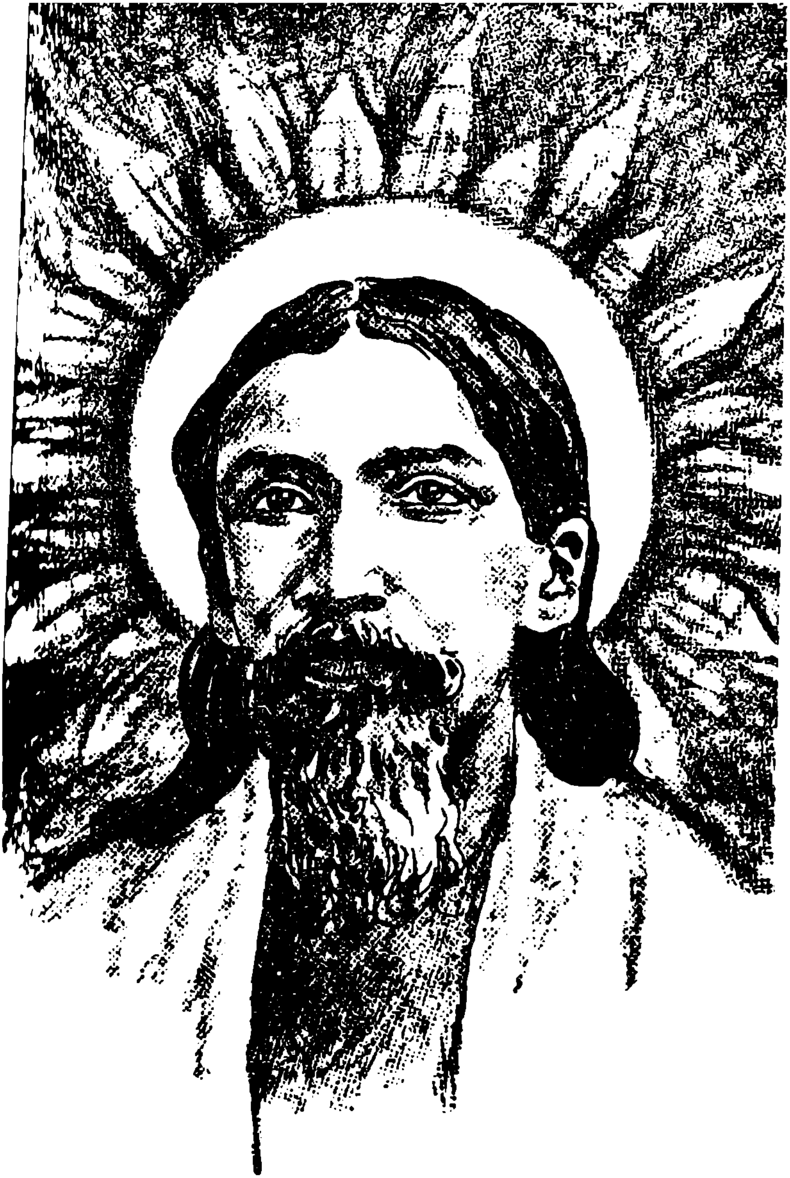

पांडिचेरी की तपोभूमि में

की बात कही थी। 1910 में ही उन्होंने देख लिया था कि भारत की स्वतन्त्रता भगवान द्वारा निश्चित हो चुकी है।

1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद जब देश उदासी का कफन ओढ़े पड़ा था, तब किसीने कहा—"भारत के लिए क़ोई आशा नहीं रही। युद्ध के उपरान्त अंग्रेज़ों का दमन-चक्र इतने ज़ोर से चलेगा कि जनता वर्षों तक स्वतन्त्रता का नाम नहीं ले सकेगी।"

यह बात जब श्री अरविन्द से कही गई तो वे बोले—"मुझे देश की स्वतन्त्रता की चिंता नहीं है। चिंता इस बात की है कि देश को स्वतंत्रता मिलने पर वह उसका उपयोग कैसे करेगा ?"

जब द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा, तब पहले-पहल उसके साथ उन्होंने कोई संबन्ध नहीं रखा, पर जब देखा कि हिटलर की विजय से पैशाचिक शक्ति सौ गुना बढ़ जाएगी; तब उन्होंने हस्तक्षेप करना शुरू किया। उन दिनों वे युद्ध के घंटे-घंटे का समाचार रखते थे और पल-प्रतिपल देखते और तोलते थे कि जो सूक्ष्म जगत् में हो रहा है उसका यहां क्या प्रभाव पड़ता है। 1945 में जब हिटलर ने आत्मा-हत्या कर ली तब दुनिया ने जाना कि कैसी थी श्री अरविन्द की ऋषि-दृष्टि।

श्री अरविन्द की खोज

लंदन टाइम्स ने एक बार लिखा था—"श्री अरविन्द केवल बुद्धि-विलासी दार्शनिक नहीं हैं। वे एक ऐसे संसार का निर्माण करने में लगे हैं जो उनके विचार में पैदा होने के लिए संघर्ष कर रहा है।"

मानव-जीवन में जो ज़हर फैला है उसका रूपांतर कैसे हो' यही था श्री अरविन्द के जीवन का महा-प्रश्न। श्री अरविन्द का दर्शन मानव के आगे वह मशाल जलाता है जिससे उसकी आंखों के आगे एक नूतन भविष्य का द्वार खुले, एक नवीन आशा की उसे झलक मिले।

विज्ञान ने आज मानव को कहां लाकर पटका है! हमारा जीवन कितना रहस्यमय है! उसमें कितने प्रकार की पहेलियां हैं! इसका सही हल क्या है! इन बातों की खोज श्री अरविन्द ने कितने ऊपर उठकर कितने गहरे पैठकर की है! यह बहुत कम लोग जानते हैं। संसार कैसा है! उसकी अपेक्षा संसार कैसा होना चाहिए इस पर श्री अरविन्द की दृष्टि थी।

बुद्धि के प्रकाश में जो कुछ करना सम्भव था, वह हो चुका। अब एक कदम आगे बढ़ने की बारी है।

मानस-लोक के परे जो लोक है उसको श्री अरविन्द

ने अतिमानस नाम दिया है । श्री अरविन्द का कहना है कि अतिमानस को पृथ्वी पर ला बसाना होगा ।

अपने महापुरुषों को दुनिया ने कब पहचाना है ! जो कहा था उसे कर दिखाने के लिए श्री अरविन्द ने जीवन की बाज़ी लगा दी ।

5 दिसम्बर, 1950 को श्री अरविन्द का तिरोधान हुआ । उनकी समाधि के प्रकाश से आश्रम का पत्ता-पत्ता प्रतिबिंबित है ।

महर्षि श्री अरविन्द

जिस युग में हम रह रहे हैं वह आणविक युग है। श्री अरविन्द इसी युग के ऋषि हैं। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि अमृत पीते थे और अमृत बरसाते थे। किसी दर्शनार्थी ने एक बार कहा था—"यह एक ऐसा पुरुष है जो दृष्टि-मात्र से मनुष्य के हृदय को जीत लेता है ।"

माताजी कौन हैं, इस संबंध में स्वयं उन्होंने कहा था—"जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूं, अपनी इच्छा-स्वभाव से भारतीय हूं ।…मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य श्री अरविन्द की महाशिक्षा को मूर्त रूप देना है ।"

लाखों वर्ष के बाद ऐसे पुरुष का जन्म हुआ

जिसने हमें सिखाया कि अपनी मुक्ति के लिए नहीं वरन् घृणा-द्वेष के जगत् में भगवान का राज्य स्थापित करने के लिए साधना करनी होगी ।

श्री अरविन्द आश्रम में जाति, वर्ण का स्थान नहीं है। न यहां स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध है। यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी एक साथ बैठकर भोजन करते हैं।

आश्रम देखकर सन् 1960 में वेदमूर्ति पं० सातवलेकर जी ने कहा—"जिस चीज़ के लिए मैं पचास-साठ वर्षों से प्रार्थना करता आया हूं । आज उसीको यहां मूर्तरूप में देख रहा हूं। वैदिक युग के बाद इस धरती पर शायद इस प्रकार का प्रयास यह पहली बार हो रहा है। यहां की साधना पूर्णरूप से वैदिक साधना है —जीता-जागता वैदिक युग यहां जन्म ले रहा है।"

इस समय श्री अरविन्द के नाम पर आधारित अरविन्द, नामक एक नगरी बसाने का प्रयास चल रहा है। यह एक ऐसी नगरी होगी जहां छीना-झपटी घृणा-द्वेष के लिए स्थान नहीं होगा। द्रव्य का, विज्ञान का, मशीन का उपयोग भगवान के लिए होगा

○ ○ ○

281003.

सरल प्रेरणाप्रद जीवनियां

मेरा बचपन	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर
झांसी की रानी	सरदार भगतसिंह
रवीन्द्रनाथ टैगोर	स्वामी रामतीर्थ
लाला लाजपतराय	गुरु गोविन्द सिंह
सरदार पटेल	सदाचारी बच्चे
डॉ राजेन्द्रप्रसाद	महापुरुषों का बचपन
विनोबा भावे	वीर पुत्रियां
जवाहरलाल नेहरू	लालबहादुर शास्त्री
महात्मा गांधी	आदर्श बालक
चन्द्रशेखर आजाद	आदर्श देवियां
श्यामप्रसाद मुखर्जी	सच्ची देवियां
गुरु नानकदेव	इन्दिरा गांधी
सुभाषचन्द्र बोस	भारत के महान् ऋषि
शिवाजी	अच्छे बच्चे
महाराणा प्रताप	गौतम बुद्ध
चाणक्य	सम्राट् अशोक
लोकमान्य तिलक	वीर हनुमान
श्रीकृष्ण	हमारे स्वामी
स्वामी विवेकानन्द	श्री अरविन्द
गणेश शंकर 'विद्यार्थी'	वीर सावरकर
गोस्वामी तुलसीदास	महर्षि वाल्मीकि
हमारे राष्ट्रनिर्माता	महाकवि कालिदास
मीराबाई	साहसी बालक
गुरु तेगबहादुर	

शिक्षा भारती कश्मीरी गेट, दिल्ली